पिण्डैषणा करते हुए वह एक गृहस्थ के घर पधारे। उस गृहस्थ का नाम पूरण था। वह नया-नया सेठ बना था। बड़ी बात यह थी कि वह जीर्ण सेठ का पड़ोसी था। पूरण सेठ ने बड़ी बेरूखी से प्रभु महावीर को देखा। फिर उसने अपनी दासी को कहा- "इस भिक्षु को जो कुछ भी घर में तैयार है, दे दो।" दासी ने एक चम्मच कुल्लत्थ (बाकुले) दिए। प्रभु महावीर ने चार मास की तपस्या का पारणा एक चम्मच भर बाकुलों से किया।

उधर मन में दान की भावना भरते हुए जीर्ण सेठ ने सोचा- "कल्पवृक्ष को अमृत से सिंचन करना सुलभ है। पर तपोमूर्ति महावीर को दान देना दुर्लभ है। अक्षय पुण्योदय से यह अवसर मिलता है।" इस प्रकार कल्पनाओं में डूबा जीर्ण सेठ प्रभु के आगमन व दान देने की प्रतीक्षा को एकटक देख रहा था। प्रतीक्षा से आंखें पथरा गई थीं। वह सोच रहा था- "प्रभु अब पधारें, अब पधारें।" पर प्रभु महावीर की उसे छवि दिखाई न दी।

जीर्ण के हृदय में भावनाओं का तूफान आ गया। श्रद्धा का ज्वार-भाटा उमड़ पड़ा। इस आध्यात्मिक प्रतीक्षा के पलों में उसका हृदय अपूर्व प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। उसकी आत्मा भावों की उच्चता की ओर बढ़ रही थीं। इधर पूरण सेठ के दान से देवों में प्रसन्नता छा गई। सहसा देव- दुन्दुभि बजी। पंच दिव्य-प्रकट। "अहोदानं अहोदानं" की देवता पुकार करने लगे। उसी समय देव-घोषणा हुई-

"प्रभु महावीर का चातुर्मासिक तप का पारणा हो गया है।"

जीर्ण सेठ ने जब यह दिव्य ध्वनि सुनी, तो उसका दिल टूट गया। हृदय पर वज्राघात हुआ। उसकी श्रद्धा डगमगा गई। वह अपने भाग्य को कोसने लगा। निराश होकर वह सोच रहा था- मैं कैसा अभागा हूं। चार मास तक निरन्तर इन्तजार करने पर भी प्रभु महावीर ने मेरे ऊपर कृपा नहीं की। आखिर मैं सचमुच जीर्ण हो गया हूं। क्योंकि मैं जीर्ण धन के अभाव से नहीं हूं, धन तो जन्म से प्राप्त हुआ है। मैं सचमुच जीर्ण हूं क्योंकि मैं प्रभु महावीर की नजर में जीर्ण हूं।' उसे अपने आप पर क्षोभ हुआ।

यह तो जीर्ण सेठ का पश्चाताप था। शास्त्रकार कहते हैं कि उसकी आत्मा उस समय इतने दिव्य परिणामों की ओर बढ़ रही थीं कि अगर वह दो घड़ी और देव-दुन्दुभि न सुनता तो उसे प्रभु महावीर से पहले केवलज्ञान प्राप्त हो जाता। यह घटना दिखाती है कि भक्ति के क्षेत्र में अमीर-गरीब का प्रश्न नहीं है। भगवान महावीर तो भक्ति के वश में हैं। जीर्ण सेठ ने अपने भक्ति द्वारा एक नए इतिहास का सर्जन किया। उधर पूरण सेठ ने प्रभु महावीर को जब पारणा कराया तो लोगों ने देवकृत दिव्य अतिशय देखे। उसके घर के बाहर लोगों का तांता लग गया। लोगों ने पूछा-"हे भाग्यशाली! तूने इस भिक्षुक को क्या भिक्षा दी है, जिस कारण देवता भी तेरे से प्रसन्न हो रहे हैं।" पूरण सेठ अहंकारवश झूठ बोलने लगा। उसने सोचा कि अगर मैं सत्य बोलूंगा तो मेरी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। फिर उसने होशियारी से काम लेते हुए शेखी बघारते हुए कहा- "भाई! मैंने इस भिक्षु को अपने हाथों से शुद्ध क्षीर का भोजन कराया था।" लोग पूरण सेठ के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। इस झूठ से पूरण को लाभ नहीं मिला पर जीर्ण सेठ, जिसने अपने हाथों से कुछ नहीं दिया था, सिर्फ भावना की थी, मात्र प्रतीक्षा की थी। उसी शुभ भाव से वह मरकर बारहवें देवलोक में देव बना। इस कथा से पता चलता है कि जैनधर्म में भावनाओं का कितना महत्व है, शुभ भावना अच्छे कर्म का कारण है, अशुभ भावना मनुष्य को भटकाती है।

बारहवां वर्ष

प्रभु महावीर ने यह चातुर्मास वैशाली में सम्पन्न किया। वहां चातुर्मास की समाप्ति पर सुंसुमारपुर की तरफ विहार किया। यहां आप गांव के बाहर अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। आप कायोत्सर्ग में खड़े थे। इसी स्थान पर देवता चमरेन्द्र ने इन्द्र के वज्र प्रहार से भयभीत होकर आपके चरणों में शरण ग्रहण की।

यहां से प्रभु महावीर विहार करते हुए मेढ़िया गांव पधारे। वहां एक गोपालक ने आपको कष्ट देने की चेष्टा की।

घोर अभिग्रह व चन्दना दासी का उद्धार

मेढ़िय ग्राम से प्रभु महावीर कौशाम्बी पधारे। उस दिन पौष कृष्णा प्रतिपदा का दिन था। प्रभु महावीर ने उस दिन अपने जीवन का घोर अभिग्रह किया।[७८]

"सिर मुंडित हो, पांवों में बेड़ियां हों, तीन दिन की भूखी हो, दाता का एक पैर देहली के अंदर दूसरा बाहर हो, उड़द के बाकुले हों, भिक्षा का समय बीत जाने पर द्वार के बीच में खड़ी हुई हो, दासी हो, राजकुमारी हो, तीन दिन से भूखी प्यासी हो, रोती भी हो, हंसती भी हो, ऐसे संयोग मुझे मिलें, तब मुझे भिक्षा लेनी है अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा ग्रहण नहीं करनी है।"[७९]

इस प्रकार कठोर अभिग्रह कर प्रभु महावीर प्रतिदिन भिक्षा के लिए निकलने लगे। पर कौशाम्बी नगरी के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में प्रभु महावीर भ्रमण करते। वह सेठों की हवेलियों में जाते। गरीब, मजदूर, दासों की झोंपड़ियों में जाते। वह उन सब कुलों में जाते, जिनका आहार शुद्ध हो। रोजाना दिन निकलता। प्रभु महावीर निकल जाते। कोई नहीं जानता था कि देवार्य क्या चाहते हैं? लोग प्रभु महावीर को भिक्षा देना चाहते थे। वे सोचते- ये कैसा निर्ग्रन्थ श्रमण है, जो रोजाना भिक्षा के लिए निकलता है, पर वापस हो जाता है। 'कोई भी प्रभु महावीर के हृदय के भावों को न जान सका। हर नर-नारी के मन में एक प्रश्न बार-बार उभरता, वह था-"इस भिक्षु को क्या चाहिए?"

प्रभु महावीर के अभिग्रह और भिक्षा हेतु भ्रमण की चिंता अब आम विषय हो गई थी। लोग प्रभु महावीर को भिक्षा देने हेतु बहुत भावुक थे। बात वहीं रुक जाती थी कि प्रभु महावीर किस तरह और किस भाग्यशाली से अन्नदान ग्रहण करेंगे। प्रभु महावीर की तपस्या का बारहवां साल चल रहा था। प्रभु महावीर का शरीर घोर उपसर्ग व परीषह सहने का आदी हो चुका था। वह चार ज्ञान के धारक हो चुके थे। मंजिल उनके करीब आने वाली थी। प्रभु महावीर की साधना का प्रसंग बड़ा अनुपम रहा है। उन्हें जन्म से दासों से लगाव रहा है। उनका जन्म होते ही प्रियंवदा दासी मुक्त हुई। इसके बाद जितने भी पारणे हुए, सब दासियों के हाथों हुए। प्रभु महावीर को किसी भी तरह की दासता पसंद नहीं थी।

प्रभु महावीर के साधनाकाल का यह अंतिम पारणा होना था। प्रभु महावीर एक दिन घूमते हुए कौशाम्बी नरेश के अमात्य सुगुप्त के घर पधारे। अमात्य की पत्नी नन्दा प्रभु महावीर की परम भक्त थी। उसे जब पता चला कि प्रभु महावीर हर सुबह निकलते हैं और वापस चले जाते हैं। अपने मन की बात किसी को बताते नहीं है। पता नहीं, कितने समय से प्रभु महावीर ऐसे ही चल रहे हैं? नन्दा प्रभु महावीर के प्रति समर्पित श्रमणोपासिका थी। वह प्रभु महावीर की कठोर साधना व अभिग्रहों से परिचित थी। इसी कारण वह बहुत दुःखी रहने लगी। भक्त का इष्ट किसी मुसीबत में हो, तो क्या नहीं कर गुजरता।

चार मास बीत चुके थे। प्रभु महावीर भिक्षा लेने का नाम नहीं लेते थे। एक दिन प्रभु महावीर अमात्य सुगुप्त के घर पधारे। नंदा ने प्रभु महावीर को भिक्षा देनी चाही, पर वह बिना कुछ ग्रहण किए वापस हो गए। नंदा तड़फ उठी। उसकी तड़फ दासियों से देखी न गई। उन्होंने अपनी मालकिन से पूछा- "आर्या! क्या बात है आप कई दिनों से उदास-उदास, बुझी-बुझी सी नजर आ रही हैं? कहीं हमारे स्वामी से तो अनबन नहीं हुई?"

नंदा दासियों के कहने से और खुलकर रोई। फिर उसने कहा- "मेरी आपके स्वामी व मेरे पति से कोई अनबन नहीं हुई। वह तो बेचारे दयालु और भद्र पुरूष हैं। असल में मेरे परमात्मा प्रभु महावीर की हालत मुझसे देखी नहीं जाती। उन जैसा तपस्वी इस युग में कोई नहीं है। वह रोजाना घूमते रहे। पर भिक्षा नहीं ली। आज मेरे गृह आए। हाथ पसारा, पर मेरे ऐसे भाग्य कहां? प्रभु महावीर को आहार देने का सौभाग्य तो किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। मेरी भक्ति में कमी लगती है। अगर कमी न होती, तो घर पर आए प्रभु खाली हाथ क्यों लौटते?"

दासियों ने कहा-"प्रभु महावीर गुप्त तपस्वी हैं। यह बात आज की नहीं, वह तो चार-चार मास बिना अन्न-जल ग्रहण किए तप करते हैं। उनके लिए यह नई बात नहीं है और यह क्रम अब भी चार माह से चल रहा है।" दासियों की बात सुनकर नंदा और भावुक हुई। आखिर वह कौशाम्बी के मंत्री की धर्मपत्नी थी। जब अमात्य सुगुप्त घर आए, तो उसने अपने पति से विनम्र निवेदन किया-"आप कैसे महामंत्री हैं कि चार मास पूर्ण हो गए हैं, मेरे भगवान महावीर भिक्षा के लिए आते हैं, चले जाते हैं। आपकी बुद्धि किस काम की? अगर आप प्रभु महावीर के मनोगत भावों का पता नहीं लगा सकते। आपको क्या चिंता है कि वह भोजन के लिए रोजाना निकलते हैं पता नहीं भोजन क्यों ग्रहण नहीं करते।"[८०]

अमात्य को प्रभु महावीर के इस तरह घूमने का तो पता था, पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था कि ऐसा क्यों हो रहा है? अमात्य सुगुप्त ने अपनी पत्नी को आश्वासन दिया कि वह शीघ्र पता लगाएंगे कि प्रभु महावीर भोजन ग्रहण क्यों नहीं करते? ऐसा यत्न करेंगे कि प्रभु महावीर के मनोभाव को जानकर उन्हें भिक्षा प्रदान करें। अमात्य और उसकी पत्नी की सारी बातों को विजया नाम की दासी ने सुना। उसने यह बात महारानी मृगावती को बताई। मृगावती दासी की बात सुनकर चिंतित हुई। मृगावती सांसारिक दृष्टि से प्रभु महावीर की मौसी थी। मृगावती ने प्रभु महावीर के बिना कुछ ग्रहण किए जाने के बारे में राजा शतनीक को बताया। सम्राट शतनीक और अमात्य सुगुप्त ने भरसक प्रयत्न किया कि प्रभु महावीर का यह अभिग्रह पूर्ण हो जाए, पर वह कुछ भी करने में असफल रहे। प्रभु महावीर का अभिग्रह अपूर्ण रहा। तब राजा शतानीक ने प्रजा को भी साधु के नियमों का ज्ञान कराया और प्रभु महावीर का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी।

पांच मास और पच्चीस दिन बीत गए। प्रभु महावीर का क्रम इसी प्रकार चलता रहा। उनके तप तेज में कोई अंतर नहीं आया। एक दिन अपने नियम अनुसार भ्रमण करते हुए धन्ना श्रेष्ठी के द्वार पर पहुंचे। वह सेठ श्रमणोपासक था। यहां राजकुमारी चन्दना सूप में उड़द के बाकुले लिए तीन दिन की भूखी प्यासी द्वार के बीच बैठी थी। उसका सिर धन्ना सेठ की पत्नी ने मुंडा दिया था। वह चन्दना को अपनी सौत समझती थी। वह चन्दना के हाथ-पांव में हथकड़ियां पहनाकर अपने मायके चली गई। चन्दना ने आते हुए प्रभु महावीर को देखा। उसका हृदय कमल खिल उठा। मन मयूर नाचने लगा। हथकड़ियां और बेड़ियां झनझना उठीं। उसने प्रभु महावीर को दूर से आते देखा और सोचा- "मेरा धन्य भाग्य है कि मेरे

भगवान मेरे पर अनुकम्पा कर यहां पधार रहे हैं, पर मेरे पास देने को क्या है? उड़द के बाकुले।''

''ऐसी तुच्छ वस्तु प्रभु महावीर को दूंगी। मेरे पास दान देने को सुपात्र सामने आ रहा है, पर देने वाला पदार्थ तुच्छ है।'' यह सोचकर चन्दना की आंखों में आंसू आ गए। उसे अपनी दासी होने का भय नहीं था। उसे भय था तो देने योग्य पदार्थ का। इस तुच्छ पदार्थ से प्रभु महावीर व्रत का पारणा करेंगे। इधर चन्दना की आंखों में आंसू थे। भगवान महावीर के सभी अभिग्रह पूर्ण हो चुके थे। भगवान महावीर ने हाथ आगे बढ़ाया। अश्रु भरी आंखों से प्रभु महावीर को आहार बहराया। प्रभु महावीर ने उड़द के बाकुले से पारणा किया। देवताओं ने 'अहोदानं अहोदानं' की घोषणा की। इस तरह प्रभु महावीर ने यह पारणा एक दासी के हाथ किया।

महासाध्वी चन्दना

चन्दना से प्रभु महावीर का आहार करना दासत्व के प्रति क्रान्ति थी। श्वेताम्बर ग्रंथों में चन्दना को राजा दधिवाहन की पुत्री कहा गया है। कथानक इस प्रकार है- कौशाम्बी के राजा शतानीक ने अचानक ही चम्पा पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन राजा के भय से भाग गया। शतानीक के सैनिक चंपा को लूटने लगे। एक सैनिक महारानी धारणी और चन्दना को लेकर भागा। सैनिक ने धारणी का शील भंग करने का प्रयत्न किया। रानी धारिणी ने धर्म-संकट को पहचान कर शील भंग के भय से जीभ खींचकर आत्म-हत्या कर ली। चन्दना की अवस्था छोटी थी। उसने चन्दना को एक वेश्या के पास बेच दिया। चन्दना ने वेश्या के पास जाने से इंकार कर दिया। वेश्या ने चन्दना को धन्ना सेठ के पास बेच दिया। धन्ना श्रमणोपासक था। उसने करूणावश चन्दना को उचित दाम देकर मोल ले लिया। उसकी पत्नी मूला बहुत शंकालु स्त्री थी। चन्दना का असली नाम वसुमति था। वह अत्यंत सुन्दर राजकुमारी थी। मूला को भय था कि मेरा पति इस सुन्दर दासी को पत्नी बना लेगा। किसी न किसी ढंग से इस दासी को घर से निकालना चाहिए, ताकि मेरा जीवन सुरक्षित रह सके। मूला इसी ताक में रहने लगी कि कब मैं इस दासी को निकालूं।

दूसरी ओर धन्ना सेठ चन्दना को अपनी पुत्री समझता था। चन्दना भी उसे अपने पिता से ज्यादा सम्मान देती थीं। दोनों में पिता-पुत्री का रिश्ता था। जीवन चल रहा था। एक दिन की बात है कि सेठ कहीं बाहर गया हुआ था। वह वापस आया। थका-मांदा था। वह सेठ जी के सेवा के लिए गर्म जल लेकर आई। सेठ चौकी पर बैठा था। चन्दना उसी समय केश स्नान करके केश सुखा रही थी। उसके लम्बे व काले केश सुखाने के लिए खुले थे। सेठ के पांव धोने के लिए चंदना जमीन पर बैठी। चन्दना ने पांव धोने शुरू किए। उसके केश उसके माथे पर गिरने लगे। सेठ ने इन केशों को उठाकर गोद में रख लिया, ताकि बाल पानी में न भीग जाएं। सेठानी यह सब देख रही थी। सेठानी पुत्री-पिता के रिश्ते को गलत ढंग से समझ रही थी। सेठानी शंका से जलने कुढ़ने लगी। उसने चन्दना को रास्ते से हटाने का निर्णय किया। आखिर एक दिन आ गया, जब सेठानी के मन की मुराद पूरी हो गई। एक दिन सेठ बाहर गया हुआ था। सेठानी ने दासी को बुलाकर लम्बे सुन्दर केश मुंडवा दिए। फिर सेठानी ने चन्दना को घर के भोंहरे में डाल दिया। उसने भोंहरे के आगे ताला लगा दिया। ताला लगाकर वह मायके चली गई। तीन दिन चन्दना भोंहरे में भूखी-प्यासी बैठी रही। तीसरे दिन सेठ वापस आया। वापिस आकर सेठ ने अपनी धर्मपुत्री को आवाज दी, पर कहीं भी चन्दना का पता न चला। सेठ ने घर का कोना-कोना छान मारा।

चन्दना का कोई पता नहीं चल रहा था।

आखिर वह उस भोंहरे की ओर गया, जहां वह कैद थी। वहां उसे चन्दना की धीमी आवाज सुनाई दी। सेठ ने भोंहरे का दरवाजा खोला। वहां चन्दना को पाया। चन्दना की दुर्दशा देखी। चन्दना भूखी प्यासी थी। सेठ ने घर में भोजन की तलाश की। रसोईघर खाली था। अचानक उसकी दृष्टि घोड़ों के लिए उबले बाकुलों पर पड़ी। उसने वह बाकुले एक छाज में डालकर चन्दना को दिए। फिर वह लोहार को लेने गया, ताकि चन्दना के बन्धन काट सके। इधर सेठ लोहार को लेने गया। उधर चन्दना ने अपने सामने पड़े बाकुले देखे। फिर उसने सोचा-"आज तीन दिन का मेरा उपवास हो गया है कितना अच्छा हो कि किसी सुपात्र को दान देकर मैं स्वयं भोजन करूं।" इतना सोचना था कि चन्दना की भावना अनुसार प्रभु महावीर पधार गए। इधर चन्दना के सुपात्र से उसके बंधन ही नहीं टूटे, बल्कि समस्त स्त्री जाति के लिए मोक्ष का द्वार भी खुल गया। यह चन्दना ही थी कि जिसे प्रभु महावीर की प्रथम शिष्या बनने का सौभाग्य मिला। प्रभु महावीर ने इसी चन्दना को अपनी ३६,००० साध्वियों का प्रमुख बनाया। चन्दना जो पहले राजकुमारी बनी, फिर दासी बनकर प्रभु को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त किया। अंत में प्रभु के हाथों दीक्षित होकर मोक्षमार्ग प्राप्त किया।

दिगम्बर परम्परा

दिगम्बर उत्तरपुराण में चन्दना की कथा दूसरे ढंग से वर्णन की गई है। उसे वैशाली-नरेश चेटक की पुत्री बताया गया है। एक दिन चन्दना उद्यान में क्रीड़ा कर रही होती है, तभी एक विद्याधर उसे उठाकर ले जाता है, पर विद्याधर भी पत्नी के भय से उसे जंगल में छोड़ देता है। वहां वह एक भील को प्राप्त होती है। वह चन्दना को ऋषभदत्त को बेच देता है, ऋषभदत्त की पत्नी सुभद्रा सेठ पर शंका करती है। सेठानी उसे खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में काजी मिला थोड़ा सा भात देती है और क्रोधवश उसे सदा सांकल से बांधे रखती है।

आगे की कहानी श्वेताम्बर ग्रंथों के अनुसार ही है। प्रभु महावीर का अभिग्रह पूर्ण कराने के कारण उसकी हथकड़ियां स्वयं टूट जाती हैं, नए केश आ जाते हैं। हथकड़ियां आभूषणों का रूप बन जाती हैं। शील के प्रभाव से मिट्टी का बर्तन स्वर्णमय बन जाता है। भात चावलों का रूप ले लेता है।

इस तरह दोनों परम्पराओं में चन्दना द्वारा प्रभु महावीर के अभिग्रह का पारणा रखने का वर्णन श्रद्धा से किया गया है। दोनों परम्पराएं उन्हें भगवान महावीर की प्रथम साध्वी मानती हैं। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार वह राजा शतानीक की रानी मृगावती के यहां आ जाती है। देवों द्वारा प्रभु महावीर के केवलज्ञान की सूचना पाकर वह भी पावापुरी के समवसरण में दीक्षित होती है। प्रभु महावीर ने इस प्रकार चन्दना के माध्यम से समस्त स्त्री-जाति का उद्धार किया। उस समय के किसी भी महापुरुष ने स्त्री-स्वतन्त्रता के प्रति इतनी आवाज नहीं उठाई। ब्राह्मण लोगों ने तो स्त्री को वेद व संस्कारों से मुक्त रखा। यहां तक कि बौद्ध धर्म में भी भगवान बुद्ध ने स्त्रियों को अपने संघ में स्थान अपने शिष्य आनंद के अनुरोध पर दिया। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में दासों, स्त्रियों और अस्पृश्य माने जाने वाले मानवों को प्रभु महावीर ने गले लगाया। सारी मानव जाति की समानता का उदाहरण प्रस्तुत किया।

कौशाम्बी से विहार करके प्रभु महावीर सुमंगल, सुच्छेत्ता पालक प्रभृत्ति क्षेत्रों को पावन करते हुए चम्पानगरी पधारे।[9] वर्षावास का समय आ चुका था। प्रभु महावीर ने यह वर्षावास स्वातिदत्त ब्राह्मण की

यज्ञशाला में किया। यहां प्रभु महावीर ने चातुर्मासिक तप किया। इस तप के प्रभाव से पूर्णभद्र और मणिभद्र यक्ष प्रभु महावीर के भक्त बन गए। वह प्रभु महावीर की सेवा में रहने लगे। स्वातिदत्त ब्राह्मण पर भी यक्षों द्वारा पूजित भगवान महावीर के तप का अच्छा प्रभाव पड़ा। उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह विचार करने लगा- 'देवार्य अवश्य ही कोई विशिष्ट ज्ञानी हैं।' वह प्रभु महावीर के पास आया। आकर उसने प्रभु महावीर के समक्ष अपने मन में वर्षों से उत्पन्न प्रश्नों का समाधान किया।

स्वातिदत्त के प्रश्न व प्रभु का समाधान

स्वातिदत्त जहां क्रियाकाण्डी ब्राह्मण था, वहां विशिष्ट ज्ञानी भी था। वह अपनी परम्परा से चिपका नहीं था। वह गुणग्राही था। उसने जो प्रश्न किए, वे उसकी विशिष्ट बुद्धि के परिचायक हैं। हमारे विचार में प्रश्न करना बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि जिसे कुछ ज्ञान होगा वही प्रश्न करेगा। अज्ञानी क्या प्रश्न करेगा? स्वातिदत्त के प्रश्न और प्रभु महावीर के उत्तर का विवरण हम निम्न पंक्तियों में दे रहे हैं-

स्वातिदत्त- "हे भिक्षु! आत्मा क्या है?"

प्रभु महावीर-"जो शब्द 'मैं' का वाच्यार्थ है वही आत्मा है अर्थात् जो शक्ति 'मैं' का अहसास कराती है वही आत्मा है।"

स्वातिदत्त ने पुनः प्रश्न किया-"आत्मा का स्वरूप व लक्षण क्या है?"

प्रभु महावीर- "आत्मा अत्यंत सूक्ष्म है। रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है। चेतना गुण ही इसका लक्षण है।"

स्वातिदत्त- "सूक्ष्म क्या है?"

प्रभु महावीर- "जो इन्द्रियों द्वारा न जाना जाए।"

स्वातिदत्त जिज्ञासु था। उसने कहा- "क्या आत्मा को शब्द, रस, गंध और वायु के सदृश सूक्ष्म माना जा सकता है?"

प्रभु महावीर ने स्पष्टीकरण करते हुए समझाया- "स्वातिदत्त! ऐसा नहीं है जैसा तूने मान रखा है। ये सभी पदार्थ तो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए जा सकते हैं। श्रोत्र के द्वारा शब्द, नेत्र के द्वारा रूप, घ्राण के द्वारा गंध और शब्द, स्पर्श के द्वारा वायु ग्राह्य है। जो इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं हो, वही सूक्ष्म कहलाता है।"

स्वातिदत्त ने पुनः पूछा- "क्या ज्ञान को हम आत्मा कह सकते हैं?"

प्रभु महावीर-आर्य! ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, पर मात्र ज्ञान आत्मा नहीं। ज्ञान का आधार आत्म ज्ञानी है। यानि ज्ञान भी आत्मा में ठहरता है।"

स्वातिदत्त- "भगवन्! प्रदेशन क्या है?"

प्रभु महावीर- "हे देवानुप्रिय! प्रदेशन का अर्थ उपदेश होता है। वह उपदेश धर्म सम्बन्धी भी हो सकता है और अधर्म के सम्बन्ध में भी। इसलिए धार्मिक उपदेश भी प्रदेशन है और अधर्म के सम्बन्ध में किया गया उपदेश भी प्रदेशन है।"

स्वातिदत्त-"प्रभु! प्रत्याख्यान आप किसे मानते हैं?"

प्रभु महावीर- "हे आर्य! प्रत्याख्यान का अर्थ निषेध है, रोकना है। यह दो प्रकार का है-

(१) मूलगुण प्रत्याख्यान, तथा (२) उत्तरगुण प्रत्याख्यान।

आत्मा के दया, अनुकंपा, श्रद्धा, भक्ति व सत्य आदि मूलगुण हैं। इनकी रक्षा मूलगुणों की रक्षा है।

हिंसा, असत्य और चोरी आदि पाप के परित्याग को मूलगुण प्रत्याख्यान कहते हैं।

इन्हीं मूलगुणों के सहायक, सदाचार के विरुद्ध आचरण के त्याग का नाम उत्तरगुण प्रत्याख्यान है।''

स्वातिदत्त प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों के समाधान पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।[८३]

ग्वाले का उपसर्ग

वर्षावास समाप्त होते ही प्रभु जंभियग्राम से मेढ़ियाग्राम पधारे। मेढ़ियाग्राम से छम्मणि पधारे। ग्राम के बाहर ध्यान मुद्रा में ध्यानस्थ हुए।[८४]

सायंकाल का समय था। एक ग्वाला उसी स्थान पर बैल लिए घूम रहा था। उसने देखा जंगल में यह भिक्षु खड़ा है, यह मेरे बैलों का ध्यान रखेगा। इस कारण उसने बैल प्रभु महावीर के समीप छोड़ दिए। उसे कोई घरेलू कार्य था। उसकी पूर्ति के लिए वह सारा दिन नगर में घूमता रहा। बैल स्वामी को न पाकर आगे जंगल में चले गए। वे घास खाते खाते जंगल में और आगे निकल गए। वहां झाड़ियों के झुण्ड थे। बैल उसके पीछे जाकर बैठ गए।[८५]

नगर से थका-मांदा ग्वाला आया। उसने देखा कि उसके बैल नहीं है। उसने बैलों के बारे में प्रभु महावीर से पूछा- ''हे देवार्य! क्या आपने मेरे बैल देखे हैं?'' प्रभु महावीर मौन समाधि में लीन, आत्म साधना में विचरण कर रहे थे। इसी कारण वह चुप रहे। प्रभु महावीर को देखकर ग्वाला गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसने कहा- ''एक तो चोरी, दूसरी सीना जोरी। मेरे बैल भी गुम कर दिए और बोलता भी नहीं। ठहरो, मैं तुम्हें तुम्हारी करनी की अभी सजा देता हूं।'' यह ग्वाला और कोई नहीं था। यह वही शय्या-पालक का जीव था, जिसके कानों में संगीत बंद न करने के कारण त्रिपुट वासुदेव के भव में महावीर के जीव ने कानों में पिघला हुआ शीशा डालवाया था। उसी समय त्रिपृष्ट वासुदेव जीव के रूप में जो भयंकर कर्मबंध हुआ था उसको भोगने का समय आ गया था। जन्म-जन्मातरों के बाद वही जीव ग्वाले का रूप धारण करके आया था। यह बात प्रभु महावीर से छिपी नहीं थी।

ग्वाले ने पूर्वभव का बदला लेते हुए प्रभु महावीर के कानों में तीक्ष्ण कीलें गाढ़ दीं। यह भयंकर उपसर्ग प्रभु महावीर ने सहा। ऐसा उदाहरण संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। प्रभु महावीर को इन कीलों से भयंकर शारीरिक वेदना हुई। प्रभु महावीर ने इस कर्मफल वेदना को प्रसन्नता से सहा। उनके मन में ग्वाले के प्रति क्षण मात्र भी क्रोध न आया।

वह चिंतन कर रहे थे कि त्रिपुट वासुदेव के भव में मैंने जो शय्या-पालक के कानों में शीशा डालवाया था, उसे कितनी पीड़ा हुई होगी? ये पीड़ा तो उससे कहीं कम है। कर्मफल तो भोगना है। कर्म क्षीण करने के लिए तो मैंने राज्य, परिवार छोड़ा है। फिर मेरा किया मुझे भोगना है। मेरे कर्म का फल कोई दूसरा कैसे भोग सकता है? मनुष्य अकेले कर्म करता है, अकेले ही भोगता है। अकेले ही जन्म-मरण की परम्परा बांधता है, अकेले ही इस परम्परा से मुक्त होता है।

कीलें निकालना

प्रभु महावीर वहां से चलकर मध्यम पावा पधारे। प्रभु महावीर भिक्षा के लिए घूम रहे थे। उनके कानों में कीलें ठुकी हुई थीं। असाधारण वेदना में भी प्रभु महावीर घूम रहे थे। प्रभु महावीर का यह अंतिम उपसर्ग था। उनका पहला उपसर्ग भी ग्वाले द्वारा प्रदत्त था और अंतिम भी ग्वाले द्वारा प्रदत्त था।

इस नगर में सिद्धार्थ नामक एक वणिक् रहता था। जब प्रभु महावीर भिक्षार्थ घूम रहे थे, तो उस वणिक् के पास वणिक का मित्र एक वैद्य खरक बैठा था। दोनों बातें कर रहे थे। सामने प्रभु महावीर को आते देखा। दोनों उठे। उठकर प्रभु को आदरपूर्वक वंदन किया। उसी समय खरक वैद्य अपने मित्र सिद्धार्थ से बोला- "इस भिक्षु का शरीर वैसे सुन्दर लक्षणों से परिपूर्ण है, पर लगता है कि यह सशल्य है। कोई दुःख जरूर है।" सिद्धार्थ ने अपने मित्र से पूछा- "प्रभु महावीर को क्या कष्ट है? क्या शल्य है? देखकर बताओ?"

वैद्य ने प्रभु महावीर के पवित्र शरीर का निरीक्षण किया। उसे रोग समझ आ गया। उसने कहा- "किसी दुष्ट प्राणी ने इस तपस्वी के कानों में कीलें ठोक दी हैं।" सिद्धार्थ को कीलों की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। उसने अपने मित्र खरक वैद्य से कहा- "देवानुप्रिय! इस भिक्षु के कानों में से कीलें जल्दी निकालो। हमें बहुत पुण्य मिलेगा। ऐसा तरूण तपस्वी कहां मिलता है? यह तो साक्षात् भगवान का रूप है हमारे घर अपनी तप की पूर्ति हेतु पधारे हैं। इनकी सेवा करने से हमारे जन्म-जन्मांतर के कष्ट समाप्त हो जाएंगे।" सिद्धार्थ की वाणी श्रद्धामय थी। वह इस गुरू की पीड़ा को दूर करने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार था। वह श्रद्धा व भक्ति से भरा हुआ था। वैद्य खरक व सिद्धार्थ कीलें निकालने को तैयार हुए। प्रभु महावीर ने उन्हें स्वीकृति न दी। वह सचमुच महावीर थे। कोई महावीर ही इतने संकट झेल सकता है। वह उस दिन बिना भिक्षा ग्रहण किए जंगल की ओर चल दिए। खरक वैद्य व सिद्धार्थ भी अपनी धुन के पक्के थे। भक्त होते ही ऐसे हैं। कच्चा व्यक्ति क्या भक्ति करेगा? भक्ति के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है जो व्यक्ति मात्र तर्क रखता है वह प्रभु का प्यार नहीं पा सकता। दोनों जंगल में गए। प्रभु महावीर वहां ध्यानस्थ थे। उन दोनों के पास औषधि व जरूरत के उपकरण थे। वे उद्यान में पहुंचे। प्रभु महावीर को देखा। उन्हें शरीर की सुध ही कहां थी? वह तो आत्म-साधना में लीन थे। उन्होंने प्रभु महावीर के कानों से कीलें निकाल दीं। दोनों कानों से खून के फुआरे छूट पड़े। इतने बड़े उपसर्ग में भी प्रभु महावीर ने कठोर साधना जारी रखी थी। कहा जाता है कि इस अतीव भयंकर वेदना से भगवान महावीर के मुंह से एक भयंकर चीख निकली। इस चीख से अंदाज लगाया जा सकता है कि यह पीड़ा कितनी भयंकर थी। जो प्रभु महावीर १२ वर्ष पीड़ाएं, अवहेलनाएं, यातनाएं सहकर भी नहीं डोले। तब उन्होंने कोई दुःख अनुभव नहीं किया। उनकी इस चीख से सारा देवलोक कांप उठा। वैद्य ने शीघ्र ही संरोहण औषधि से रूधिर को बन्द कर दिया। घाव पर दवाई लगाई। फिर प्रभु महावीर को श्रद्धापूर्वक नमन कर क्षमा याचना कर घर को आ गए।[८६] धन्य हैं ऐसे भक्त और उनका भगवान।

दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार भगवान महावीर को तप के समय एक उपसर्ग का वर्णन मिलता है। एक बार विहार करते हुए भगवान उज्जयिनी पहुंचे और नगर के बाहर अतिमुक्तक नामक श्मशान में प्रतिमा योग धारण करके विराजमान हो गए। भगवान को देखकर महादेव नामक रूद्र ने उनके धैर्य की परीक्षा करना चाही। उसने रात्रि में भगवान के ऊपर भयानक और हृदय को कंपित करने वाली लीलाएं करने लगे। कभी वे किलकारी लगाते, कभी वीभत्स रूप धारण करके अट्टहास करते, कभी भयंकर नृत्य करने लगते और कभी एक दूसरे के उदर को फाड़कर उसके अन्दर घुस जाते। कभी वह रूद्र सिंह अथवा व्याघ्र का रूप धारण करके वीभत्स गर्जना करने लगता, कभी विकराल सर्प बनकर फुंकारने लगता। कभी वह सुन्दर देवी का रूप धारण करके नाना प्रकार के अश्लील हाव भाव दिखाता और अपनी मोहिनी द्वारा उन्हें ध्यान से विचलित करने का प्रयत्न करता। इस प्रकार उसने

भगवान की समाधि भंग करने की नाना प्रकार की चेष्टाएं की किन्तु भगवान तो इन सब उपद्रवों से अप्रभावित रहकर आत्म-ध्यान में सुमेरू पर्वत की तरह अचल रहे। तब रूद्र अत्यन्त लज्जित होकर भगवान के चरणों में नतमस्तक हो गया और अत्यन्त विनय एवं भक्ति से भगवान की भावभरी स्तुति करने लगा- प्रभु! धन्य हैं आप। आपकी धीरता और वीरता अनुपम है। आप योगियों के मुकुटमणि हैं। आप वस्तुतः महति और महावीर हैं। नाथ! आप महान हैं। प्रभो! मुझ अज्ञानी की अविनय को आप क्षमा करें। आप तो क्षमामूर्ति हैं और मैं कुटिल, पामर और अधमह हूं। मैंने आपके प्रति अक्षम्य अपराध किए हैं, मेरी दुष्टता की सीमा नहीं है। मेरा उद्धार कैसे होगा। यों कहकर प्रायश्चित के उद्वेग से उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। बहुत देर तक वह अपने अपराधों को आंखों की राह बहाता रहा। जब हृदय का भार कुछ कम हो गया तो वह भक्ति के उद्वेग से नृत्य करने लगा। फिर वह भगवान महावीर को नमस्कार करके चला गया। (जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, लेखक पं. बलभद्र जैन, पृष्ठ 385)

भगवान महावीर के विहार क्षेत्र के नगर व गावों के नाम

अंग, अच्छ (अत्स्य), अनार्यदेश, अपापा, अयोध्या, अवन्ती, अस्थिकग्राम, अहिच्छत्ता, आमलकप्पा, आलभिका, कालायसंनिवेश,काशी, कुण्डलपुर, कुंडाकसन्निवेश, कुमाराकसन्निवेश, कुरू, कुरूजांगल, कूपियसन्निवेश, कर्मग्राम, केकय, कोटिवर्ष, कोल्लाकसन्निवेश, कोसला, कौशाम्बी, क्षितिप्रतिष्ठित, गंगा, गुणशील, गोकुल, गोव्वरगांव, ग्रामाकसन्निवेश, चन्दनपादप उद्यान, चन्द्रावतरण चैत्य, चम्पा, चेदि, चोराकसंनिवेश, छम्माणि, जम्बूसंड, जंभियगांव, ज्ञातखण्डवन, तबायसन्निवेश, ताम्रलिप्ति, तुंगिकसंनिवेश, तुंगिया नगरी, आलंभिका, उज्जयिनी, उत्तरकोसल, उत्तरवाचाला, उत्तरविदेह, उन्नाण (उन्नाक), उपनन्दपाटक, उल्लुकातीर, ऋजुवालुका, ऋषभपुर, तोसलिगांव, थूणाकसन्निवेश, दक्षिणवाचाला, दशार्णपुर, दूतिपलाश चैत्य, दृढ़भूमि, नंगलागांव, नंदिग्राम, नालन्दा, पत्तपालक, पांचाल, पावा, पालकग्राम, पुरिमताल, पूर्णकलश, पूर्णभद्र चैत्य, पृष्ठचम्पा, पेढ़ाल उद्यान, पोतनपुर, पोलासपुर, प्रतिष्ठिानपुर, बंग, बनारस, ब्राह्मणग्राम, भंगि, भद्दिया, भद्दिलनगरी, भोगपुर, मगध, मथुरा, मद्र्दनासन्निवेश, मलयगांव, मलयदेश, मल्लदेश, कनखल आश्रमपद, कनकपुर, कयलि समागम, कयंगला, कर्णसुवर्ण कोटिवर्ष, कर्मार ग्राम, कलंबुका, कलिंग, काकन्दी, काम्पिल्य, महापुर, महासेन उद्यान, माणिभद्र चैत्य, मालव, मिथिला, मिंढिया, मृगग्राम, मेढ़ियागांव, मोकानगरी, मोराकसन्निवेश, मौर्यसन्निवेश, राजगृह, लोहार्गला, वत्स, वर्धमानपरु, वाणिज्जग्राम, वालुकाग्राम, विजयपुर, विशाखा, वीतभय, वीरपुर, वैशाली, शालिशीर्ष, श्रावस्ती, श्वेताम्बिका, सानुलट्ठियग्राम, सिंधुदेश, सुरभिपुर, सुवर्णखल, सुवर्णवालुका, सुंसुमारपुर, सुह्म, हस्तिशीर्ष, हस्तिशीर्षनगर।

भगवान महावीर की विदेह साधना

प्रथम अंग आचारांगसूत्र में प्रभु महावीर की साधना का अनुपम ढंग से वर्णन किया गया है जिसके कुछ अंश हम पाठकों के ज्ञान के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं-

शीतकाल की ठंड और गर्मी की आग की लू, वर्षा की तूफानी हवाएं उनको कभी विचलित न कर सकीं। दीक्षा के समय प्रभु महावीर के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया था। सुगन्धित विलेपन और उबटन किए गए थे। उस विलेपन की सुगन्ध कई मास उनके शरीर पर बनी रही। प्रभु महावीर के लिए यह सुगन्ध ही कष्ट का कारण बनी। प्रभु महावीर जब जंगल में खड़े होकर ध्यान

करते थे, तो उनकी देह से मीठी सौरभ हवा के साथ फैलकर वातावरण को सुगन्धित बना देती थी। इस मधुर सौरभ से खिंचे भंवरे प्रभु महावीर के शरीर पर आकर लिपटने लगते जैसे फूलों से लिपट रहे हों। शरीर से रस खींचने के बाद वह उन्हें तीखे डंक मारते। मांस नोच लेते। खून पीते। इस पीड़ा को भगवान महावीर ने समता से सहन किया। साधना काल का कुछ समय प्रभु महावीर ने कर्म-निर्जरा हेतु लाढ़ देश (बंगाल क्षेत्र) की ओर प्रस्थान किया। यही प्रदेश अनार्य माना जाता था। साधु जीवनचर्या के अनुसार यहां घूमना अत्यन्त दुष्कर था। उस प्रांत के दो भाग थे- एक वज्र भूमि तथा द्वितीय शुभ्र भूमि। यह दोनों भाग उत्तर राढ़ व दक्षिण राढ़ के नाम से प्रसिद्ध थे। इन दोनों के मध्य में अजय नदी बहती थी। प्रभु महावीर ने इस क्षेत्र में विहार किया। वहां के उपसर्ग इतने भयंकर थे कि प्रभु महावीर के ही प्रमुख गणधर सुधर्मा ने स्वयं अपने मुख से उनका विवरण इस प्रकार किया है-

प्रभु महावीर के रहने के लिए अनुकूल आवास नहीं मिला। रूखा-सूखा भोजन भी कठिनता से उपलब्ध हुआ। कुत्ते उनको दूर से देखकर ही काटने के लिए झपटते[७९] वहां पर ऐसे व्यक्ति विरले थे जो काटते, नोचते हुए कुत्तों को रोक पाते। वहां अधिकांश व्यक्ति दुष्ट बुद्धि के थे। वे हटाने के स्थान पर उन कुत्तों को छुछकारकर प्रभु महावीर को काटने की प्रेरणा देते। प्रभु महावीर किसी के प्रति मन में क्षोभ न लाते। तन के प्रति उनमें किसी प्रकार का ममता भाव नहीं था। वह तो इन उपसर्गों के विकास में सहायक समझकर इन्हें सहर्ष सहते थे।[८८] जैसे लड़ाई में हाथी शत्रु के तीखे वार की तनिक परवाह नहीं करते। वे हाथी तो आगे बढ़ते ही रहते हैं। उसी प्रकार प्रभु महावीर उपसर्गों-परीषहों की परवाह किए बिना आगे बढ़ते रहे। वहां क्षेत्रों में ठहरने के लिए दूर-दूर तक गांव उपलब्ध नहीं होते थे। ऐसी स्थिति में वह भयंकर अरण्य में ठहरते थे।[८९] जब वे किसी गांव में जाते, तो गांव के निकट पहुंचते ही गांव के लोग बाहर निकलकर उन्हें मारने-पीटने लगते और गांव छोड़ने को कहते।[९०]

वे अनार्य लोग प्रभु महावीर पर दण्ड, मुष्टि, भाला, पत्थर व ढेलों से प्रहार करते और फिर प्रसन्न होकर चिढ़ाते।[९१] वहां क्रूर मनुष्यों ने प्रभु महावीर के सुन्दर शरीर को नोंच डाला। उन पर विविध प्रकार के प्रहार किए। भयंकर परीषह उनके लिए उपस्थित किए। उन पर धूल फेंकी।[९२] वे अनार्य लोग भगवान महावीर को ऊपर उछाल-उछालकर गेंद की तरह पटकते थे। आसन से धकेल देते, तब भी प्रभु महावीर ऐसी स्थिति में विदेह रहते थे। वह इच्छा व आकांक्षा से रहित संयम-साधना में स्थिर होकर कष्टों को शांति से सहन करते?[९३] जिस प्रकार कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध में अक्षत रहता है, वैसे ही अचल भगवान महावीर ने अत्यंत कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपनी संयम-साधना को अक्षत रखा।[९४] वह समभावपूर्वक सभी उपसर्गों को अनार्य प्रदेशों में सहन करते रहे। पुनः आर्य प्रदेशों में कदम बढ़ा रहे थे कि पूर्ण कलश सीमा प्रांत पर दो तस्कर मिले। वे अनार्य प्रदेश में चोरी करके आ रहे थे, उन्होंने प्रभु महावीर को अशुभ समझकर कष्ट दिया। इन परीषहों और उपसर्गों को शांत भाव से सहन करने में समर्थ, भिक्षु-प्रतिमाओं का पालन करने वाले, धीमान, शोक और हर्ष में समभाव, सब गुणों में आगार, अतुलबली होने के कारण देवताओं ने उन्हें महावीर नाम दिया।[९५] प्रभु महावीर का जैसे राज्य, परिवार छूट चुका था इसी तरह पहला नाम भी छूट चुका था। अब तो वह श्रमण थे। महावीर थे। निर्ग्रंथ थे। बौद्ध कथानकों में प्रभु महावीर को निर्ग्रंथ ज्ञातापुत्र कहा गया है। आचार्य हरिभद्र ने लिखा है- "जो शुद्ध-विक्रान्त होता है वह वीर कहलाता है। कषायादि महान् अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से यह विक्रान्त महावीर होता है।"

शरणदाता : प्रभु महावीर

तपस्याकाल में हमने जीर्ण सेठ का जहां वर्णन किया है। वहीं चमरेन्द्र द्वारा शरण ग्रहण करने का वर्णन करना भी जरूरी है। जब प्रभु महावीर सुंसुमारपुर पधारे, उस समय शक्रेन्द्र से भयभीत हुआ, चमरेन्द्र प्रभु महावीर की शरण में आया था इसका वर्णन तो हम साधना काल में कर आए हैं। अब वह क्यों आया था इसका स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है-

असुरराज चमरेन्द्र पूर्वभव में 'पूरण' नाम का एक बाल (हठयोगी) तपस्वी था। वह दो-दो व्रतों का तप करता था। पारणे के दिन काठ के पात्र में भिक्षा मांगता था। इस पात्र के चार भाग थे। पहले भाग की भिक्षा वह पथिकों को प्रदान करता। दूसरी भाग की भिक्षा पक्षियों के आगे डालता। तीसरी भाग की भिक्षा जल के जीवों (मछली आदि) को खिलाता। चतुर्थ भाग में ग्रहण की भिक्षा स्वयं ग्रहण करता। उसने १२ वर्ष तक इसी प्रकार साधना की। अंत समय में एक मास के निराहार अनशन के बाद चमरचंचा राजधानी का इन्द्र बना। इन्द्र बनते ही उसने अवधिज्ञान के माध्यम से अपने ऊपर बैठे सौधर्मावतंसक विमान में शक्र नामक सिंहासन पर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते देखा। उससे यह सुख सहा न गया पर, उसमें शक्रेन्द्र से लड़ने की शक्ति नहीं थी। असुरराज अपनी राजधानी छोड़ प्रभु महावीर की शरण में आया। तप का यह बारहवां वर्ष था। वहां उसने विशाल विकुर्वणा की। वह देवराज इन्द्र, शकेन्द्र को डराने लगा। इधर शकेन्द्र ने भी कोप करके अपना वज्रायुध उसकी तरफ फेंका। आग की चिनगारी उगलते हुए वज्र को देख भयभीत हुआ। इस भयंकर शस्त्र से चमरेन्द्र जिस मार्ग से आया उसी मार्ग से पुनः लौट गया। शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा तो पता चला कि यह श्रमण भगवान महावीर की शरण लेकर आया है और पुनः वहीं भागा जा रहा है। कहीं प्रभु महावीर को यह वज्र कष्ट न दे, उसने शीघ्र ही इस शस्त्र को रोका। उधर चमरेन्द्र ने सूक्ष्म रूप बनाया। वह प्रभु महावीर के चरणों में छिप गया। शक्रेन्द्र ने प्रभु महावीर के करीब आते वज्र को संभाला। चमरेन्द्र को भगवान महावीर की शरण में आया जानकर उसे क्षमा कर दिया। यह घटना जैन इतिहास में एक अचम्भा है कि असुरराज कभी सौधर्म सभा में नहीं जाते, पर अनंत काल के पश्चात् यह आश्चर्य घटित हुआ। सुंसुमारपुर से प्रभु महावीर भोगपुर, नन्दिग्राम होते हुए मेढ़ियाग्राम पधारे। यहीं ग्वाले का उपसर्ग हुआ था। प्रभु महावीर के साधना काल का वर्णन तो देव भी करने में असमर्थ हैं फिर हमारे में यह शक्ति कहां कि इसका श्रद्धापूर्वक वर्णन किया जाए। पूर्व आचार्यों ने जैसा कथन किया है, उसी को आधार मानकर हमने १२ वर्षों का वर्णन किया है।

भगवान महावीर की साधना का लेखा-जोखा

प्रभु महावीर ने १२ वर्ष १३ पक्ष की लम्बी अवधि में से केवल ३४९ दिन आहार किया। शेष दिन निर्जल और निराहार रहे।

संक्षिप्त में भगवान महावीर का तप का ब्यौरा इस प्रकार है-

तपकाल	गिनती
६ मास	१ तप
५ दिन कम ६ मास	१
चातुर्मासिक	९

तीन मास	२
सार्ध द्विमासिक	२
दो महीने	६
सार्ध मासिक	२
मासिक	१२
पाक्षिक	७२
उपवास	१६
अष्टम भक्त	१२
षष्टम भक्त	२२९

इसके अतिरिक्त दशम भक्त आदि की तपस्या का विवरण आचारांगसूत्र में मिलता है। कुल मिलाकर प्रभु महावीर ने साधक जीवन के ४,५१५ दिनों में ३४९ दिन भोजन ग्रहण किया। ४,१६६ दिन निर्जल तपस्या द्वारा कर्म को खपाया।

प्रभु महावीर के गुणों का वर्णन कल्पसूत्र में स्वयं आचार्य भद्रबाहु ने विभिन्न उपमाओं द्वारा किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है-

(१) कांस्य पात्र की तरह निर्लेप
(२) शंख की तरह निरंजन राग रहित
(३) जीव की तरह अप्रतिहत गति।
(४) आकाश की तरह आलम्बन रहित।
(५) वायु की तरह अप्रतिबद्ध।
(६) शरद ऋतु के स्वच्छ जल की तरह निर्मल।
(७) कमल पत्र की तरह भोग से निर्लेप।
(८) कूर्म (कछुए) की तरह जितेन्द्रिय।
(९) गैंडे के श्रृंग की तरह एकाकी।
(१०) पक्षी की तरह अप्रतिबद्ध विहारी।
(११) भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त।
(१२) श्रेष्ठ हाथी की तरह शूरवीर।
(१३) वृषभ के समान पराक्रमी।
(१४) सिंह की तरह दुर्द्धर्ष।
(१५) सुमेरू की तरह परीषहों को सहने में अकंप।
(१६) सागर की तरह गम्भीर।
(१७) चन्द्रमा की तरह सौम्य।
(१८) सूर्य की तरह देदीप्यमान।
(१९) स्वर्ण की तरह कान्तिमान।
(२०) पृथ्वी की तरह सहनशील।
(२१) आग की तरह जाज्वल्यमान, तेजस्वी।

ये गुण उनकी महानता को सिद्ध करते हैं। आखिर इंतजार की घड़ियां समाप्त हो रही थीं। उनके जीवन का लक्ष्य सामने दिखाई दे रहा था। १२ वर्ष तप करने का उद्देश्य पूरा होने को था। तीर्थंकरों के जीवन का चौथा मंगलमय केवलज्ञान कल्याणक आ गया था। अब वह साधक से भगवान के रूप में प्रस्तुत होने वाले थे। समस्त जगत के जीवों के कल्याणार्थ वह धर्म उपदेश देने वाले थे जिसकी मानव जाति को जरूरत थी।

nn

उद्धृत सन्दर्भ स्थल

---

१. आवश्यक चूर्णि, पृ २६८
२. आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ.१८७/१
३. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. २१६
४. चउपन्न महापुरुष चरियं पृ. २६३-२७४
५. (क) महावीर चरियं-नेमिचन्द, गाथा ५७-६७ और ३६-३७
(ख) महावीर चरियं- गुणभद्र पृ.१४२-१४४
६. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पृ.१०/३/२-१४
७. कल्पसूत्र सुबोधिका
८. आवश्यक चूर्णि पृ. २६६
९. महावीर चरियं, पृ. १४५१
१०. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३
११. महावीर चरियं पृ.१४५१
१२. (क) महावीर चरियं गुण १४३/१४४
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२
१३. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ. २६८
(ख) महावीर चरियं-नेमिचन्द, पृ.६३-६४
(ग) महावीर चरियं गुणभद्र, पृ. १४४
(घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२
(ड) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ.१२
(च) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ.१०७
१४. (क) महावीर चरियं ५/१४४
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/९
१५. महावीर चरियं ५/१५२
१६. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २६७
(ख) आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति १२२
१७. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ.२६९
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति,पृ.१६७
(ग) महावीर चरियं, पृ.४/१४४
१८. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति,पृ. २६७
(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ.२८८
१९. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, २६७
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२५
२०. (क) महावीर चरियं ५/१४५१
(ख) मलयगिरि, पृ. २६७
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२८
२१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ.२६७
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र१०/३/२९-३१
(ग) महावीर चरियं गुणचन्द ५/४५१
२२. (क) महावीर चरियं (नेमिचन्द) ४४२
२३. (क) समवायांग
(ख) आवश्यक निर्युक्ति ३४४
(ग) विशेषावश्यक भाग्य १८९३
(घ) मलयगिरि वृत्ति २६४
२४. उत्तरपुराण ७४/३/४/३२१
२५. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २४४
२६. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, २६८
(ख) आवश्यकचूर्णि २७१
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३०
२७. आवश्यकचूर्णि २६९
२८. (क) आवश्यकचूर्णि २७१
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ७७-८१, पृ.१४८
२९. (क) मलयगिरि वृत्ति पृ. २८८
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/५/३५
३०. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २०७०/१
(ख) महावीर चरियं ५/१५५१
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/१४२०
३१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २२०
(ग) महावीर चरियं ५/१५५१
३२. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७४
(ख) महावीर चरियं ५/१५५१
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/५/२८
३३. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७०
(ख) आवश्यकचूर्णि २७५
(ग) महावीर चरियं ५/१५६
३४. (क) तुब्भे अन्नथवि पुआ, अहे कहिं जासि।
- मलयगिरि वृति
३५. (क) आवश्यकचूर्णि २७४,

(ख) मलयागार वृत्त २७३ एव आवश्यक हारभद्राया वृत्त १२५

(ग) महावीर चरियं नेमिचन्द १९९३

(घ) महावीर चरियं गुणभद्र ५/१८५

(ड) चउपन्न महापुरिष चरियं १०/५/१२५

३६. (क) आवश्यकचूर्णि २८

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति १४७

(घ) महावीर चरियं ५/१०९

(ड) नीति ९८४

(च) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र २/२४५-२५१

३७. (क) आवश्यकचूर्णि २७५

(ख) महावीर चरियं (नेमिचन्द) ९८४

(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र ७०/३/६०

३८. (क) आवश्यकचूर्णि २७५

(ख) महावीर चरियं (नेमिचन्द) ९८९

(ग) महावीर चरियं गुणभद्र

(घ) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/२३६

(ड) आवश्यकनिर्युक्ति ३४०

(च) विशेषावश्यक भाष्य १९०२

३९. (क) महावीर चरियं गुणभद्र १७५

४०. (क) आवश्यकचूर्णि २७८

(ख) मलयगिरि वृत्ति २७३

(ग) महावीर चरियं १७६

४१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५१

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०३

(ग) आवश्यकचूर्णि २७९

(घ) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/२८१-२८५

४२. (क) आवश्यकचूर्णि २७९-२८०

(ख) विशेषा १९०३

(ग) आवश्यकचूर्णि २७९-२८०

४३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५८

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०४-१९०६

(ग) आवश्यकचूर्णि पृ. २८०-२८१

(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७४

(ड) महावीर चरियं गुणभद्र १७८

(च) निशीथभाष्य ४२१८,पृ. ३६६ तृतीय

४४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०७

(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५

(घ) महावीर चरियं १८१

(ड) भद्रगणि २८२

(च) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/३४८-३५१

४५. (क) आवश्यकचूर्णि २८२

(ख) महावीरचारय नामचन्द्र १०३

४६. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०७

(ग) आवश्यकचूर्णि २८२

(घ) आवश्यकचूर्णि मलयगिरि वृत्ति २७३१

(ड) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) पृ. १०३६

(च) महावीर चरियं ६/१८३

(छ) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/३७२

४७. (क) आवश्यकचूर्णि २८२

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७६

(ग) विशेषावश्यकभाष्य १९०९

४८. (क) आवश्यकचूर्णि २८३

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति ३५७

(ग) आवश्यकभाष्य १९०९

(घ) आवश्यक मलयगिरि १७६

(ड) महावीर चरियं नेमिचन्द्र १०५६-१०५९

४९. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५८

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१०

(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७७

(घ) महावीरचरियं गुणभद्र ६/१८८

५०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५९

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९९१

(ग) आवश्यकमलयगिरि वृत्ति पृ. २७७

(घ) महावीर चरियं ६/१८७

५१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति पृ.२७८

(ख) महावीर चरियं गुणभद्र ६/१८९

५२. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/४५३-४५६

(ख) आवश्यकचूर्णि २८५

५३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६०

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१२

(ग) आवश्यकचूर्णि २८७

(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७८-२७९

५४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६१

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१३

५५. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/५०६-५१८

५६. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६५

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१५

(ग) आवश्यकमलयगिरि वृ. २८१/१

५७. (क) आवश्यकचूर्णि २८९-२९०

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८१

(ग) हारिभद्रीया २०६

(घ) महावीर चरियं ६/१९५

(च) त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र १०/३/५४३-५५२

५८. (क) भगवती १५/३, ५/७५

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७
(ग) महावीर चरियं ६, पृ.२२३
(घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१२९

५९. (क) भगवती १५ पृ. ३७५
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७
(ग) महावीर चरियं ६, पृ. २२३-२२४
(घ) त्रिषष्टिशळाका पुरुष चरित्र १०/४/१३४-१३७
त्रिषष्टिशलाका में इन लोगों को प्रभु पार्श्वनाथ का शिष्य कहा गया है।

६०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९२९
(ग) आवश्यकचूर्णि २९९
(घ) महावीर चरियं ७/२२४/१

६१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९२९
(ग) आवश्यकचूर्णि २९९
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७
(ड) महावीर चरियं ७/२२४
(च) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१३९-१४२

६२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७९
(ख) आवश्यक मलयगिरि १९३०
(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१४३-१४७
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५

६३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७८
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९३०

६४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७९
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९३१

६५. (क) स्थानांग टीका पत्र ६५-२
(ख) स्थानांग वृत्ति प्रपत्र ६५-२
(ग) स्थानांग वृत्ति पत्र ५-२

६६. (क) महावीर चरियं गुणभद्र ७७/२३५
(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१४९-१५९

६७. (क) स्थानांग वृत्ति पत्र ५-२ हारिभद्रीया वृत्ति २१५

६८. (क) महावीर : एक अनुशीलन-आचार्य देवेन्द्र मुनि ३५२-३७५
(ख) आवश्यकनिर्युक्ति ३८५-३९९
(ग) आवश्यकचूर्णि ३९०
(घ) आवश्यक हारिभद्रीया २१६-२१७
(ड) महावीर चरियं गुणभद्र ७/२२८
(च) महावीर चरियं नेमिचन्द्र ११०५-१०१४
(छ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८२-२८९

६९. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९०-३९१

७०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ९२
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४४
(ग) आवश्यकचूर्णि ३१२
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९१-९२
(ड) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९

७१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९३
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४५
(ग) आवश्यकवृत्ति २९२
(घ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९

७२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९३
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४५
(ग) आवश्यकचूर्णि ३१३
(घ) आवश्यकमलयगिरि वृत्ति २९२
(ड) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९-२२०

७३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९४
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४६
(ग) आवश्यकचूर्णि ३१३
(घ) आवश्यकमलयगिरि २९२

७४. (क) आवश्यकचूर्णि २१४
(ख) आवश्यक मलयगिरि २९२
(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२०

७५. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५,९६
(ख) आवश्यकचूर्णि ३१४
(ग) महावीर चरियं १/१९-१२

७६. भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ ३४०

७७. जीर्ण सेठ का प्रसंगः महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) ११४४ व त्रिषष्टिपुरुषशलाका पुरुष चरित्र
में उपलब्ध है।

७८. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०२
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९५४

७९. (क) आवश्यकचूर्णि ३१६-३१७
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९४-२९५

८०. (क) आवश्यकचूर्णि ३१७
(ख) आवश्यकवृत्ति २९५
(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२३
(घ) महावीर चरियं १२६०

८१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०४
(ख) विशेषावाश्यकभाष्य १९५
(ग) आवश्यकचूर्णि ३२०
(घ) आवश्यकवृत्ति २२५
(ड) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९६
(च) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४७

८२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०५
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९५७

८३. (क) आवश्यकचूर्णि ३२०-३२१
(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२५-२२६

(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९७
(घ) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४८
(ङ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६०५-६१३

८४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०७
(ख) आवश्यकभाष्य १९५९

८५. (क) आवश्यकचूर्णि २२१-२२२
(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२६
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९७
(घ) महावीर चरियं नेमिचन्द्र १३३५-१३४०

८६. (क) आवश्यकचूर्णि ३२२
(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ३२६-३२७
(ग) आवश्यक मलयगिरि २९७-२९८
(घ) महावीर चरियं (नेमिचन्द) १३४३-१३५१
(ङ) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४८-२४९
(च) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९८-२९९
(छ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६/६२७-६४६

८७. आचारांग १/९/३/२
८८. वही १/९/३/५
८९. वही १/९/३/५
९०. वही १/९/३/९
९१. वही ५१/९/३/१०
९२. वही १/९/३/११
९३. वही १/९/३/१२
९४. वही १/९/३/१३
९५. (क) आवश्यक २/१४-१६
(ख) कल्पसूत्र १२